

आ ज के जी व न में अ हिं सा का म ह त्व

—डा. हुकमचंद जैन

(एम० ए० त्रय : (संस्कृत, इतिहास, प्राकृत)
पी-एच० डी० असिस्टेंट प्रोफेसर
जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर)

भगवान् ऋषभदेव ने जिस साधना को अपनाया वह अहिंसा की साधना थी। उसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने प्राणातिपातविरमण किया।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ हिंसा न करना अर्थात् “न हिंसा इति अहिंसा।” वास्तव में हिंसा क्या है? सूत्रकृतांग में लिखा है :—प्रमाद और भोगों में जो आसक्ति नहीं होती है वही अहिंसा है। संक्षेप में राग-द्वेष की प्रवृत्ति का आना हिंसा है। स्थूल रूप से हिंसा दो प्रकार की होती है। एक द्रव्यहिंसा जिसमें क्रिया द्वारा प्राणघात होता है। एक वह भी हिंसा है जो क्रिया द्वारा प्राणघात नहीं है अपितु किसी प्राणी के प्रति किंचित् बुरे विचार का आना है। इसे भावहिंसा कहते हैं। इसी बात को समणसुत्त में भी कहा गया है :—“प्राणियों की हिंसा करो और (उनकी) हिंसा न भी करो (किन्तु) (हिंसा के) विचार से (ही) (कर्म) बन्ध (होता है)। निश्चय नय के (अनुसार) यह जीवों के (कर्म) बन्ध का संक्षेप (है)।”¹

इसके अलावा जैनेतर ग्रन्थों में भी अहिंसा के भाव दर्शाये गये हैं। बौद्ध के लंकावतार सूत्र में भी लिखा है :—“मद्य, मांस और प्याज नहीं खाना चाहिए।”²

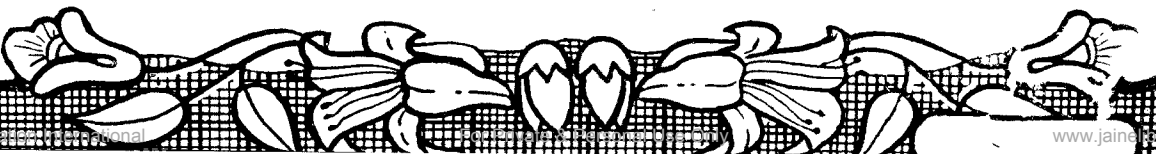
मनुस्मृति में भी कहा गया है :-

दृष्टि पूतं न्यसेत पादम्।³

1. अज्झवसिएण बंधो, सत्ते मारेज्ज मा य मारेज्ज ।
एसो बंध समासो, जीवाणं णिच्छय णयस्स ॥

—डा० के० सी० सोगाणी, समणसुत्त चयनिका, III-58

2. जैन, राजेन्द्र प्रसाद, जैनेतर धर्मों में अहिंसा का स्वर, नामक लेख । —जिनवाणी 1984 में प्रकाशित
3. जैन, राजेन्द्र प्रसाद, जैनेतर धर्मों में अहिंसा का स्वर (मनुस्मृति का उल्लेख) ।



अर्थात् पाँवों को सावधानीपूर्वक रखो ।

इस प्रकार जैनेतर ग्रन्थों में भी अहिंसा के भाव दिखायी देते हैं ।

इस संसार में जहाँ कहीं भी दृष्टि पड़ती है, वहाँ प्राणी हिंसा करता हुआ दिखायी देता है । आखिर इनके मूल में क्या है ? सर्वेक्षण करने पर पता चलता है कि हिंसक व्यक्ति छल-कपट, दाँव-पेंच, क्रोध-मान, माया-लोभ आदि कषायों से ग्रसित रहता है । जिसके परिणामस्वरूप हिंसक, जघन्य अपराध करता रहता है । अगर हम उनको यह उपदेश दें कि ये काम नहीं करने चाहिए । इनमें हिंसा निहित है या ये बुराइयों से युक्त हैं तो काम नहीं चलेगा । उसे ऐसे सरल उपाय बताने पड़ेंगे जिन्हें वह जीवन में सरलता से उतार सके क्योंकि नैतिक तत्व केवल उपदेश से गले नहीं उतरते अपितु उनको व्यावहारिकता में लाना आवश्यक है । केवल ऐसे उपदेशों से भी काम नहीं चलता बल्कि विभिन्न दृष्टान्तों, उदाहरणों के साथ स्वयं अपने आचरण के प्रयोग से ही सम्भव हो सकेगा ।

प्राणियों में जहाँ स्व-पर का भेद दिखाई देगा वहाँ हिंसा की भावना रहेगी । इसी बात को समणसुत्त में कहा गया है—“तुम स्वयं से (स्वयं के लिए) जो कुछ चाहते हो, (क्रमशः) उसको (तुम) दूसरों के लिए चाहो और (न चाहो), इतना ही जिन-शासन (है) ।”¹

यदि वह सोचे जो मेरे लिए ठीक नहीं वह दूसरों के लिए कैसे ठीक हो सकता है । क्योंकि दूसरों का अहित अपना अहित है । दूसरों का हित अपना हित है । ऐसा कार्य करके अगर वे बता देंगे तो हिंसक प्राणी के दिल-दिमाग में यह बात ठीक बैठ जायेगी जो कुछ मैं कर रहा हूँ वह अलग है तथा उसकी हिंसक भावनाएँ, धीरे-धीरे गलने लगेगी । महात्मा गांधी के भी यही विचार थे । उन्होंने इस सिद्धान्त का व्यावहारिक जगत में प्रयोग कर लोगों को अहिंसा का मूल मन्त्र समझाया । अनेक लोगों ने इसका अनुसरण भी किया । पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने पंचशील के सिद्धान्त में अहिंसा को प्रमुख स्थान दिया । इस स्वपर से समत्व एवं एकत्व की भावना को बढ़ावा मिलता है ।

जब तक प्राणी में “जीओ और जीने दो” की भावना घर नहीं करती तब तक उसमें ईर्ष्या-द्वेष, वैमनस्य, छल-कपट आदि बुराइयाँ उसके आस-पास मण्डराती रहेगी । आचारांग में इसी बात की पुष्टि करते हुए कहा गया है :—“सभी प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है, सभी को सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय लगता है, वध अप्रिय लगता है, जीवन सभी को प्रिय लगता है ।”² इस बात से मनुष्य संवेदनशील बनता है तथा “जीओ और जीने दो” की भावना का विकास होता है तथा दूसरों के कष्ट को समझने की क्षमता आती है ।

प्रत्येक व्यक्ति धन-दौलत आदि वस्तुओं के संचय में लगा रहता है चाहे उसे आवश्यक हो या न हो । इसके लिए चाहे कितने ही गलत से गलत काम क्यों न करने पड़ते हों । फिर भी प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध रहता है । जिसके परिणामस्वरूप गलत प्रवृत्तियों का विकास होता है जिसमें सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक विषमताएँ फैल जाती हैं । मानव, दानव बनकर रह जाता है । इसलिए व्यक्ति को

1. सोगानी, डा० कमलचन्द जी, समणसुत्त चयनिका, गा० नं० 15 ।

2. सब्बे पाणा पिआउया सुहसाता दुक्ख पडिक्कुला अप्पियवघा ।

पियजीविणो जीवितुकामा । सब्बेसि जीवितं पियं ॥

—सोगानी, डा० कमलचन्द जी, आचारांग चयनिका, पृ० 24



उतना ही संचय करना चाहिए जितना आवश्यक हो। यदि आवश्यकता से अधिक संचय किया है तो उसका सामाजिक विकास में सदुपयोग हो। ऐसे व्यक्ति जो सामाजिक कार्य करते हुए दिखायी देते हैं, वे व्यक्ति किसी को उपदेशित करें तो उनका प्रभाव ज्यादा पड़ेगा।

मानव में आसक्तिजन्य भाव या अज्ञानता कूट-कूट कर भरी हुई है। इसी अज्ञानता के कारण वह दूसरों को दुःख देता है। हर इच्छा की पूर्ति में आसक्तिजन्य भाव दर्शाता है और उसके पीछे लगा रहता है। वह यह नहीं सोचता कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह सही है या गलत। इसका भावी पीढ़ी एवं समाज पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। जब यह बात उसकी समझ में आ जायेगी तब वह अच्छे काम करेगा। उसमें अज्ञानता एवं मोह शिथिल होने लगेगा।

केवल, ज्ञान ही नहीं उसके साथ करुणा का भाव भी आना आवश्यक है। करुणा मानव को जीवन के उच्च स्तर पर आसीन करती है क्योंकि वैचारिक क्रान्ति के बाद ही प्राणी में करुणा का जन्म होता है। करुणा को अहिंसा का आधार कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। महाराजा कुमारपाल ने भी अमारि की घोषणा करवायी थी जो अशोक से भी एक कदम आगे दिखायी देता है। हेमचन्द्र ने अपने द्रयाश्रय काव्य में कहा है कि उन्होंने कसाइयों एवं शिकारियों द्वारा होने वाली हिंसा को रोका। इसी प्रकार के उल्लेख मारवाड़ के एक भाग में स्थित रतनपुर के शिव मन्दिर जोधपुर राज्य के किराड़ से प्राप्त हिंसा विरोध के आलेख आज भी इसकी साक्षी देते हैं। इसीलिए मनुष्य को प्राणियों के प्रति दया करनी चाहिए। कबीर ने भी इसी बात की पुष्टि करते हुए कहा है—

दया दिल में राखिए, तू क्यों निर्दय होय।

साईं के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर होय ॥

अहिंसा को जीवन में उतारने के लिए व्यक्ति को चरित्र की आवश्यकता है। चरित्रवान व्यक्ति की कथनी और करनी में बहुत समानता होती है। चरित्रवान् व्यक्ति के गुणों का उल्लेख करते हुए समणसुत्त में कहा गया है—“जो चरित्र युक्त (है), (वह) अल्प शिक्षित होने पर (भी) विद्वान (व्यक्ति) को मात कर देता है, किन्तु जो चरित्रहीन है, उसके लिए बहुत श्रुत-ज्ञान से (भी) क्या लाभ (है) ?” ऐसे व्यक्ति ही समाज एवं राष्ट्र के प्रति वफादार हो सकते हैं। दूसरे नहीं। भगवान् महावीर ने भी चरित्र की विशुद्धता पर विशेष बल दिया है। समणसुत्त में भी कहा है—“क्रिया-हीन ज्ञान निकम्मा (होता) है, तथा अज्ञान से (की हुई) क्रिया (भी) निकम्मी (होती है), (प्रसिद्ध है कि) देखता हुआ (भी) लंगड़ा (व्यक्ति) (आग से) भस्म हुआ और दौड़ता हुआ (भी) अन्धा व्यक्ति आग से भस्म हुआ।”²

चरित्र के महत्व को बताते हुए उमास्वाति ने अपने “तत्त्वार्थ सूत्र” में भी लिखा है—

सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ।

चरित्र के अभाव के कारण हमारा देश अनेक व्याधियों, कठिनाइयों, अनेतिकता एवं भ्रष्टाचार की ओर बढ़ रहा है। अपने कर्त्तव्य को कोई समझता नहीं अपितु दूसरों के कर्त्तव्यों की ओर दृष्टिपात करते हैं। यदि व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को समझने लग जाय तो वह एक दूसरे के प्रति निकट आयेगा तथा

1. सोगानी डा० कमलचन्द जी, समणसुत्त चयनिका, गा० 81।

2. वही गाथा नं० 72।



राष्ट्र एवं समाज के प्रति वफादार बनेगा। वह ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कृत्रिमता के वातावरण से दूर हूटेगा एवं लोक कल्याण की भावना का विकास होगा।

मद्य, मांस आदि व्यसनों से दूर नहीं रहेगा तब तक उसमें अहिंसा की भावना का विकास नहीं हो सकता। लोगों को यह शिक्षा देनी पड़ेगी। चोरी नहीं करनी चाहिए। इससे मन दूषित होता है तथा अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। शराब नहीं पीना चाहिए। इसके पीने से बुद्धि नष्ट होती है। शरीर काम-वासनाओं से युक्त हो जाता है। बीमारियाँ फैलती हैं, धन का अपव्यय होता है। जुआ खेलने से आदमी वर्चस्व हो जाता है। उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा गिरती है। पर-स्त्री रमण करने वालों को सरे बाजार अपमानित किया जाता है। उसके परिवार एवं समाज पर कु-अभाव पड़ता है। शिकार से जीवों का वध होता है, जीव हिंसा की ओर अग्रसर होता है। इसी बात को समणसुत्त में समझाया गया है—

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥¹

उपर्युक्त विवेचन का सार यही है कि अहिंसा को हम तभी जीवन में उतार सकेंगे जब हम सभी में सहिष्णुता, चिष्यबन्धुत्व, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, दया, दान, नम्रता, अपरिग्रह की भावना पैदा हो। हम सभी मान, माया, लोभ, क्रोध आदि कषायों से दूर रहते हुए चरित्र का विकास करें। इसलिए प्रारम्भ से ही बच्चों में नैतिक शिक्षा का होना आवश्यक है। ताकि भावी पीढ़ी सुसंस्कारित हो सके। बच्चों को बचपन से ही यह भी शिक्षा मिलनी चाहिए। कम नहीं तोलें, चोरी नहीं करें, मिलावट नहीं करें, लेन-देन के बाँट, तराजू, गज, मीटर सभी सही रखें, बच्चों को शराब, मांस आदि अन्य कुप्रवृत्तियों से दूर रखना चाहिए एवं बुद्धियों का ज्ञान भी समय-समय पर कराना चाहिए। यदि हम बच्चों को आध्यात्मिक संस्कार में डालेंगे तब संभव हो सकता है कि विकृतियाँ उनमें नहीं दिखाई दें तथा आगे जाकर महान् पुरुष बन सकें।



1 वही, गा० न० 55 ।

